इकाई 18 मार्क्सवाद - 1 : मार्क्स, लेनिन, माओ

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 कार्ल मार्क्स (1818-1883)

18.2.1 अलगाववाद

18.2.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

18.2.3 वर्ग युद्ध

18.2.4 अतिरिक्त मूल्य

18.3 वी. आई. लेनिन (1870-1924)

18.3.1 सर्वहारा के अग्रणी के रूप में दल

18.3.2 लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद

18.3.3 साम्राज्यवाद

18.3.4 ज़ंजीर की दुर्बलतम कड़ी

18.3.5 सहजकता तत्व समय तथा स्थान को चयनात्मकता प्रदान करता है

18.4 माओ ज़े डौंग (1893-1976)

18.4.1 कृ-ाक क्रान्ति

18.4.2 विरोधाभास

18.4.3 ऑन प्रैक्टिस

18.4.4 संयुक्त मोर्चा तथा नवीन लोकतंत्र

18.5 सारांश

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

गत दो सौ व-ों से भी अधिक, उदारवाद राजनीतिक दर्शन में एक प्रभुत्वकारी तत्व रहा है। अपने पहले अवतरण जिसे अब शास्त्रीय अथवा नकारात्मक उदारवाद कहा जाता है और जो बाद के सकारात्मक अथवा कल्याणकारी उदारवाद अथवा नवउदारवाद से अलग है, अन्य सभी से अलग, वह उदारवाद स्वतंत्रता का समर्थन करता था। जबकि एक राजनीतिक मत/सिद्धान्त के रूप में शास्त्रीय/नकारात्मक उदारवाद व्यक्ति के कुछेक अहस्तांतरणीय प्राकृतिक अधिकारों का पक्ष लेता था, अपने आर्थिक रूप में, यह अहस्तक्षेपी अथवा स्वतंत्र-बाज़ार अर्थव्यवस्था का प्रवक्तता था। उदारवाद के इन दो अभिधारणाओं के कारण, यह शीघ्र ही पूँजीवाद की आर्थिक विचारधारा बन गया, जिसका उद्देश्य पूँजीवादी वर्ग के हितों की रक्षा तथा उनका प्रोत्साहन करना था। जहाँ एक ओर ऐसी अर्थव्यवस्था ने पूँजी को कुछ ही हाथों में केन्द्रित किया, वहाँ उन्होंने सर्वहारा (मज़दूर) वर्ग के अलगाव तथा शो-ाण को बढ़ावा दिया। अपनी इन कमज़ोरियों के कारण उदारवाद का किन्हीं अनेक दिशाओं में खण्डन होने लगा। शास्त्रीय उदारवाद तथा अहस्तक्षेपी अर्थशास्त्र पर एक क्रमबद्ध व तीखा-कड़वा प्रहार कार्ल मार्क्स ने किया था और उन्होंने यह दावा भी किया था कि सर्वहारा वर्ग समस्त पूँजीवादी व्यवस्था को क्रान्तिकारी साधनों

से उखाड़ फैंक अपने अलगाव व शो-ाण से छुटकारा पा सकता है। अपने राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक दर्शन के विवादात्मक स्वरूप के कारण, मार्क्सवादी विचार एक सशक्त उदारवाद-विरोधी राजनीतिक विचारधारा के रूप में उभरे, जिन्हें समाजवाद अथवा साम्यवाद के रूप में जाना जाता है। वास्तव में, गत 150 व-ों के उदारवाद तथा मार्क्सवाद, दो मुख्य प्रतियोगी विचारधाराओं में एक दूसरे के आलोचकों व प्रहारकों के रूप में दिखायी दे रही हैं। इस समस्त प्रक्रिया में उदारवाद तथा मार्क्सवाद, सिद्धान्त व व्यवहार दोनों, में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। स्वयं उत्तर-मार्क्स मार्क्सवादियों ने आरंभिक मार्क्सवादी सूत्रणों को संशोधित, रूपान्तरित तथा अभिवृद्धित किया है। इस सदंर्भ में वी.आई. लेनिन तथा माओ ज़े डांग के योगदान विशे-ा तथा उल्लेखनीय हैं। इस इकाई में विद्यार्थियों को मार्क्सवाद के महत्वपूर्ण पहलुओं से परिचित कराना है, विशे-ातः मार्क्स, लेनिन तथा माओं के विचारों के प्रकाश में।

मार्क्स, लेनिन तथा माओ मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धान्तकार हैं। इनमें प्रत्येक ने अपने अपने ढंग से लाखो लोगों की सोच को प्रभावित किया है तथा 20वीं शताब्दी के विश्व की शक्ल ही बदल दी है। जबकि मार्क्स ने इस परिवर्तन के लिए सैद्धान्तिक नींव प्रदान की, लेनिन तथा माओ ने अपने अपने समाज को सफलतापूर्वक निरूपण करने का प्रयास किया है। लेनिन ने भूतपूर्व सोवियत संघ के समाज को तथा माओ ने जनवादी चीन के समाज को, दोनों ने, अपने अपने समाजों की विशे-ा परिस्थितियों में मार्क्सवदी सिद्धान्तों व मान्यताओं को लागू करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने प्रारंभिक मार्क्सवादी अभिधारणों में कुछ नए आयाम जोड़कर तथा उन अभिधारणाओं की पुनः व्याख्या करके मार्क्सवादी सिद्धान्त व व्यवहार में अभिवृद्धि की है। इनमें प्रत्येक के योगदान को, संक्षेप में, निम्नलिखित बताया जा सकता है।

18.2 कार्ल मार्क्स (1818-1883)

5 मई 1818 को ट्राइर (जर्मन) में जन्मे मार्क्स ने पहले बॉन विश्व विश्वविद्यालय तथा बाद में बर्लिन विश्वविद्यालय में विधि का अध्ययन किया। बर्लिन विश्वविद्यालय में मार्क्स युवा हेगलवादी आन्दोलन की ओर आकर्-ात हुए जो न केवल प्रशीयन सरकार की आलोचना करता था, अपितु ईसाई धर्म की भी। क्योंकि मार्क्स सरकार विरोधी आन्दोलन के निकट थे, इसलिए सरकार तथा विश्वविद्यालय के द्वार उनके लिए बन्द हो गए थे। अतः उन्होंने पत्रकारिता को अपना व्यवसाय बना लिया तथा 1842 में ***रीहिन्श ज़ीतुंग*** पत्र का सम्पादक बने। सम्पादक के रूप में उन्होंने सरकार की आर्थिक नीतियों के विरुद्ध कटु आलोचकीय लेख लिखने आरंभ कर दिये। प्रशीयन शासक मार्क्स के विचारों से काफी अप्रसन्न थे। अतः इस पत्र को बन्द करने के आदेश दे दिए गए। जर्मनी में अपने आप को घुटन की स्थिति में पाते, मार्क्स 1843 में फ्रांस आ गए। पैरिस में अपने वास के दौरान मार्क्स फ्रांसीसी समाजवादियों के सम्पर्क में आए तथा जर्मन प्रवासियों को संगठित करना आरंभ कर दिया। पैरिस में ही मार्क्स ने अपनी मुख्य रचना *इक्नॉमिक एण्ड फिलोसॉफिक मैनुस्क्रपीटस* (ई. पी. एम.) 1844 में लिखी, जो पहली बार 1932 में प्रकाशित हुई थी। इस रचना का केन्द्रीय वि-ाय ***अलगाववाद*** (alienation) था। अपने पैरिस वास के दौरान मार्क्स फ्रैडरिक ऐंग्लस के सम्पर्क में आए, जो उसके जीवन प्रयन्त मित्र तथा हितकारी रहे। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण 1844 में ही मार्क्स को फ्रांस भी छोड़ना पड़ा था। ऐग्लंस के साथ मार्क्स बैलज्यिम आ गए। मार्क्स तीन व-ार्ा तक बैलज्यिम रहे और वहाँ उन्होंने इतिहास का गहन/गंभीर अध्ययन किया, जिसके कारण बाद में उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त अर्थात् इतिहास की भौतिक व्यवस्था की सुप्रसिद्ध अवधारणा प्रस्तुत की। इस

सिद्धान्त का विवरण मार्क्स ने ऐंग्लस के साथ मिलकर लिखी *द जर्मन आइडियोलोजी* दिया था। ई. पी. एम. की भांति *द जर्मन आइडियोलोजी* भी मार्क्स के जीवन के दौरान प्रकाशित नही हुई थी। इसी समय मार्क्स ने *कम्युनिस्ट लीग* में प्रवेश किया जो जर्मन प्रवासियों का एक संगठन था। जब इस लीग की 1847 में लंदन में बैठक हुई, तो मार्क्स तथा ऐंग्लस को *कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो* लिखने का काम सौंपा गया। 1848 में *कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो* रचना ने यूरोप में मज़दूरों द्वारा सुझावित क्रान्तियों के लिए खासा वातावरण बना दिया। 1848 में फ्रांस के बाद पुनः जर्मनी में आकर मार्क्स ने *रीहिन्श ज़ीतुंग* का पुनः प्रकाशन आरंभ कर दिया। पहले की भांति मार्क्स ने प्रशीयन सरकार की अपने सम्पादकीय लेखों में खूब आलोचना की तथा पहले की भांति इस पत्र को फिर बंद करने के आदेश दिए गए। मार्क्स 1849 में इंग्लैण्ड आ गए तथा 1883 में अपनी मृत्यु तक लंदन में रहे।

इंग्लैण्ड में मार्क्स के 34 व-र्षों के वास के दौरान उनमें दो प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले। **पहला**, वह धीरे धीरे परन्तु नियमित रूप से दर्शन से अर्थशास्त्र की ओर बढ़ते चले गए। अलगाववाद जो **ई. पी. एम.** का केन्द्रीय वि-ाय था, मार्क्स उस अवधारणा से होते हुए शो-ाण की अवधारणा के विश्ले-ाण की ओर बढ़ गए (टी. आर. शर्मा द्वारा लेख "कार्ल मार्क्सः अलगाववाद से शो-ाण तक" *जरनल ऑफ पोलिटिकल साईन्स*, खण्ड 40, संख्या 3, सितम्बर 1979, पृ-ठ 339 देखें)। उन्होंने गंभीर आर्थिक प्रश्नों जैसे मज़दूरी, श्रम, पूँजीवाद तथा अतिरिक्त मूल्य का गहन अध्ययन किया। **दूसरा**, उन्होंने लंदन वास के दौरान जितना गंभीर लेखन लिखना आरंभ किया, उतना ही उन्होंने यूरोप में मज़दूरों के आन्दोलनों को नेतृत्व भी दिया। वह मात्र पूँजीवाद तथा उसके शो-ाणकारी स्वरूप की आलोचना का हत्थेदार कुर्सी पर बैठने वाले सिद्धान्तकार हीं नहीं थे, अपितु वह एक क्रान्तिकारी तथा साम्यवाद का प्रचारक-विचारक भी थे। इस दिशा की ओर उनकी उत्कीर्ण रचना *ग्रुनड्रिस* (रूपरेखा) थी, जिसे उन्होंने 1857 में लिखा, परन्तु जो 1939 में ही पहली बार प्रकाशित हुई थी। इस रचना का संक्षेपण उनके द्वारा लिखी एक अन्य रचना *ए प्रीफेस टू कॉन्ट्रीब्युशन टू द क्रीटीक ऑफ पोलिटिकल इकोनिमी* में नज़र आता है। मूल्य का श्रम सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य तथा पूँजी संक्रेन्द्रण के कानून सम्बन्धी मार्क्स की धारणा **कैपिटल** के तीन खण्डों वाली साहित्यक कृति में नज़र आती है। **कैपिटल** का पहला खण्ड 1867 में प्रकाशित हुआ था, परन्तु उसके अन्य दो खण्ड मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् ऐंग्लस द्वारा प्रकाशित कराए गए थे।

मार्क्स ने लंदन वास के दौरान अंग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी श्रमिकों को भी संगठित करने के प्रयास किए थे। 1864 में, मार्क्स ने अन्यों के साथ मिलकर यूरोप के मज़दूरों के लिए पहला मुख्य संगठन बनाया था जिसे अन्तर्रा-ट्रीय मज़दूर समुदाय अथवा *कम्युनिस्ट इंटरनेशनल* कहा जाता है। 1876 तक यह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल सक्रिय रहा तथा उसका गौरवशाली क्षण 1871 में नज़र आया जब यह पैरिस कम्यून स्थापित करने में सफल रहा। पैरिस के मज़दूरों ने पैरिस पर कब्ज़ा कर लगभग दो महीनों तक नगर में शासन किया। 1871 में मार्क्स द्वारा रचित *सिविल वार इन फ्रांस* पैरिस कम्यून के लक्ष्यों तथा कार्यशैली का विस्तृत वर्णन है। 1870 के पश्चात् मार्क्स यूरोप में घटी विभिन्न घटनाओं के विरुद्ध मात्र अपनी प्रतिक्रियाएँ ही प्रस्तुत करते रहे। वे उन साम्यवादियों की आलोचना करते रहे जो लासेल के राज्य समाजवाद का समर्थन दे रहे थे। इस आलोचना का वर्णन मार्क्स द्वारा रचित *क्रीटिक आफ़ द गोथ प्रोग्राम* में मिलता है।

18.2.1 अलगाववाद

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि मार्क्स अपने शुरुआती जीवन में हेगलवादी आदर्शवाद की ओर आकर्-ात हुआ थे, परन्तु फ्यूबैक के प्रभाव में उन्होंने मानववादी प्रकार के साम्यवाद को ग्रहण कर

लिया था जिसका विवरण *ई.पी.एम.* में स्प-ट किया गया था। मार्क्स ने पूंजीवाद की आलोचना इस आधार पर की थी कि उस में श्रम के अलगाववाद के तत्व विद्यमान थे। केवल साम्यवादी समाज में ही अलगाववाद के तत्व से छुटकारा मिल सकने की संभावना होती है। अलगाववाद एक जटिल प्रकार की अवधारणा है। कई बार इसकी संज्ञा **विमुखता, अभिदृ-यकता, तथा मूर्त-निरूपणता** आदि से की जाती है। सरल शब्दों में, अलगाववाद का अर्थ है, **अमानवीयकरणता** अर्थात् **स्वयं की क्षति**। एक पूंजीवादी व्यवस्था में एक मज़दूर यांत्रिक तरीके से काम करता है तथा अपने किए जाने वाले काम में किसी आनन्द की अनुभूति नहीं करता। उसका श्रम एक वस्तु का रूप धारण कर लेता है जिसे उसे ज़िन्दा रहने के लिए बेचना पड़ता है। इस प्रकार से वह अपने काम से अलग हो जाता है। वह अपने श्रम के उत्पाद से, अपने साथी मज़दूरों से तथा प्राकृतिक संसार से भी अलग हो जाता है। मार्क्स का तर्क यह है कि पूंजीवादी समाज में एक मज़दूर अपने द्वारा उत्पादित उत्पाद से इसलिए अलग हो जाता है क्योंकि वह उत्पाद जो उन्होंने बनाया है, वह उसका न होकर पूँजीपति का उत्पाद होता है। पूंजीवाद का प्रतिस्पर्धायी स्वरूप मज़दूर को उस के साथी- मज़दूरों से भी अलग कर देता है। सार रूप में, एक मज़दूर अपनी सृजनात्मक योग्यताओं से जो मनु-य के रूप में उसकी विशे-ाता होती है, अलग हो जाता है। मार्क्स का विश्वास है कि साम्यवादी समाज में ही व्यक्ति एक स्वतंत्र सृजन पात्र के रूप को प्राप्त करेगा और तब उस समाज में उसके द्वारा किया गया कार्य, नीरस गतिविधि नहीं होगा। निजी सम्पत्ति अलगावीय श्रम का फल तथा परिणाम है और इसलिए इसका उन्मूलन व्यक्ति को उसकी अलगावीय स्थिति से शोधित करेगा।

18.2.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

विचारों के इतिहास में मानवीय समाजों के विकास की तीन व्याख्याओं का वर्णन किया जाता हैः **आध्यात्मिक व्याख्या, आदर्शवादी व्याख्या** तथा **भौतिकवादी व्याख्या**। पहली व्याख्या के अनुसार, मानवीय इतिहास की सभी घटनाएँ ईश्वर की इच्छा अर्थात् दैवी अवसर्जन के कारण होती हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार, विचार ही हैं जो मानवीय इतिहास को गति प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, विचारों के विकास के अनुरूप मानव इतिहास के सभी क्षेत्रों में विकास होता रहता है। आदर्शवादी व्याख्या का सम्बन्ध मार्क्स से पहले के एक जर्मन दार्शनिक हेगेल से जुड़ा हुआ है। तीसरी व्याख्या के अनुसार (जिसे मार्क्स ने बताया है) मानवीय इतिहास के सभी परिवर्तन जीवन की भौतिक अवस्थाओं में परिवर्तन के कारण होते हैं। इस इकाई में हमारा सम्बन्ध इस तीसरी प्रकार की व्याख्या के साथ है। भौतिकवादी व्याख्या हेगलवादी आदर्शवादी व्याख्या के विपरीत है। आदर्शवादी व्याख्या में विचार, भाव, मन-मस्ति-क पहले हैं तथा पदार्थ का स्थान द्वितीय है जबकि मार्क्स की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार, पदार्थ का पहला स्थान तथा भाव, विचार, मन-मस्ति-क का दूसरा स्थान है। ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्सवादी लेखन का सार है। यह मार्क्स की *जर्मन आइडियोलोजी* का मुख्य/मूल विचार है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इस तथ्य की व्याख्या का प्रयास है कि, उत्पादन की विधि में घटित परिवर्तन सभी ऐतिहासिक घटनाओं का मूल कारण होते हैं। प्राथमिक साम्यवाद से दासता, दासता से सामंतवाद, सामंतवाद से पूंजीवाद तथा पूंजीवाद से समाजवाद तथा साम्यवाद में सभी परिवर्तन समाज की भौतिक अवस्थाओं तथा लोगों के भौतिक जीवन में परिवर्तनों के कारण होते हैं। उत्पादन की विधि में (i) *उत्पादन की शक्तियाँ/साधन* (भूमि, श्रम, पूँजी, मशीन-उपकरण, कारखाने आदि) तथा (ii) *उत्पादकीय सम्बन्ध* (दास-स्वामी, सर्फ-बैरन, सर्वहारा-पूँजीपति) होते हैं। प्रत्येक समाज की आर्थिक संरचना उत्पादकीय सम्बन्धों का दर्पण होती है और यह सम्बन्ध उस समाज को वास्तविक नीवं प्रदान करते हैं। भौतिक सम्बन्ध समाज को आधार देते हैं, जिन पर कानूनी,

राजनीतिक, वैचारिक संरचना का निर्माण होता है तथा उसके अनुरूप सामाजिक चेतना के विशि-ट रूप बनते रहते हैं। ऐसी सोच हेगलवादी धारणा के विपरीत थी, जिसमें चेतन अस्तित्व को निर्धारित करता है।

मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त द्वंद्वात्मक भी है। मार्क्स ने हेगेल से द्वंद्वात्मक तरीका लिया था। हेगेल के अनुसार सभी ऐतिहासिक परिवर्तनों को विचारों के क्षेत्र में **वाद, प्रतिवाद तथा संवाद** के रूप में समझाया गया था। हेगेल के अनुसार एक विचार (वाद) अपने विरोध-विचार (प्रतिवाद) को जन्म देता है, तथा अंततः उनके पारस्परिक अंतर्विरोध का समाधान संवाद में परिणीत होता है। यह संवाद समय के बीतने के साथ वाद का स्थान ले लेता है और यह वाद प्रतिवाद को जन्म देता है; इन दोनों का संघर्-ा संवाद में बदल जाता है और फिर संवाद का वाद में बदलना, वाद का प्रतिवाद को जन्म देना, दोनों में फिर संघर्-ा, फिर संवाद का आना - इस प्रकार की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। यह तथ्य जानने योग्य है कि जहाँ हेगेल द्वंदात्मक तरीके को वैचारिक संसार की व्याख्या हेतु प्रयोग करते हैं, वहीं मार्क्स द्वंदात्मक तरीके को भौतिक संसार की व्याख्या हेतु प्रयोग करते हैं। यही कारण है कि हेगेल द्वंदात्मक आदर्शवाद की बात करता है और मार्क्स द्वंदात्मक भौतिकवाद की।

18.2.3 वर्ग युद्ध

उत्पादकीय तरीका अथवा सामाजिक उत्पादन का तरीका समाज को संगठित करता है तथा उत्पादन के साधन जिस प्रकार ऐसे उत्पादन में प्रयोग किये जाते हैं, वह समाज के सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी तथा वैचारिक स्वरूप को निर्धारित करते हैं। एक विशे-ा चरण पर उत्पादकीय शक्तियाँ उत्पादकीय सम्बन्धों को पीछे छोड़ देती हैं अथवा उन सम्बन्धों के अनुरूप नहीं रहतीं और यह उत्पादकीय सम्बन्ध उत्पादकीय शक्तियों के मार्ग में बाधा डालते हैं। यह अंतर्विरोध/विरोधाभास जो उत्पादकीय शक्तियों तथा उत्पादकीय सम्बन्धों में पनपता है, अंततः वर्ग युद्ध में परिवर्तित हो जाता है। यह युद्ध उनके बीच होता है, जिनके पास उत्पादन के साधन होते हैं और उनके बीच जिनके पास केवल श्रम शक्ति होती है। मार्क्स के अनुसार वर्ग युद्ध सभी प्रकार के मानवीय समाजों की एक निरंतर रहने वाली विशे-ाता है। *कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो* में मार्क्स तथा ऐंग्लस ने लिखाः "अब तक के समस्त सामाजिक जीवन का इतिहास वर्ग संघर्-ा का इतिहास हैः स्वतंत्र व्यक्ति तथा दास, संभ्रात तथा सामान्य जन, भूस्वामी तथा भूदास, श्रेणीपति तथा दस्तकार, संक्षेप में, उत्पीड़न तथा उत्पीड़ित, निरंतर एक-दूसरे का विरोध करते तथा अनवरत, कभी लुक-छिप कर तथा कभी खुलकर, संघर्-ा होते रहे हैं।" जब यह वर्ग युद्ध ऐसे चरण पर पहुँच जाता है, जहाँ विरोधाभाव तीव्र हो जाते हैं तब उस विरोधाभाव को एक सामाजिक क्रान्ति द्वारा दूर किया जाता है। उस क्रान्ति से नए तथा उच्चतर उत्पादकीय तरीके का जन्म होता है, जो बेहतर उत्पादकीय शक्तियों तथा बेहतर उत्पादकीय सम्बन्धों का संकेत देते हैं। समय के बीतने के साथ यह उत्पादकीय शक्तियाँ पुनः उत्पादकीय सम्बन्धों पर हावी पड़ती हैं, फिर क्रान्ति होती है, फिर नए समाज की रूपरेखा जहाँ बेहतर उत्पादकीय सम्बन्ध व उत्पादकीय शक्तियाँ, बेहतर उत्पादकीय तरीके अनुसार कार्य करते हैं - समाज फिर, समय के बीतने के फलस्वरूप इन दोनों में संघर्-ा और फिर नयी सामाजिक व्यवस्था : विकास का यह क्रम वर्ग युद्ध तथा उसके पश्चात् क्रान्ति द्वारा चलता रहता है। एक वर्गीय समाज का एक अंकित लक्षण यह है कि भिन्न आर्थिक हितों के कारण वर्गों के बीच प्रतिद्वन्द्विता व विरोधाभास उठता रहता है। अपने वर्गीय हित की रक्षा के लिए जो वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, वह वर्गीय शासन स्थापित करता है। "प्रतिद्वन्द्विता नहीं है, तो प्रगति नहीं है।" - मार्क्स ने इस तथ्य पर बल दिया था। उपर्युक्त तर्क से स्प-ट होता है कि मार्क्स पूंजीवादी समाज में राज्य को वर्गीय शासन का साधन मानते हैं। इस तर्क से यह तथ्य भी

उभरता है कि यदि परस्पर विरोधी वर्गों को समाप्त कर दिया जाए, जिसके फलस्वरूप वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जाती है, तो राज्य अनावश्यक बन जाता है और वह धीरे-धीरे लुप्त हो जाएगा।

18.2.4 अतिरिक्त मूल्य

एक और सिद्धान्त जिसका मार्क्स ने प्रतिपादन किया था, वह अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है। इसी अवधारणा के माध्यम से मार्क्स ने पूंजीवादी समाज में पनप रहे शो-ाण के सम्पूर्ण तत्व की व्याख्या की थी। स्प-टतया सरल शब्दों में, अतिरिक्त मूल्य का अर्थ वह है, जिसे हम सामान्यतः लाभ कह सकते हैं। मार्क्स का तर्क यह है कि मज़दूर सामाजिक वस्तुएँ पैदा करता है और पूँजीपति उन वस्तुओं को मज़दूर को दी जाने वाली मज़दूरी से अधिक मूल्य पर बेचता है। अतः मज़दूर को वस्तुओं के उत्पादन में लगाए गए समस्त श्रम (अर्थात् श्रम शक्ति) के बदले में राशि नहीं मिलती। उसके श्रम के किसी भाग को पूँजीपति ज़ब्त (अर्थात् चुरा) कर लेता है। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त मूल्य के श्रम सिद्धान्त से उभरता है। मूल्य के श्रम सिद्धान्त का भाव यह है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु में लगे श्रम पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त मूल्य तब सामने आता है, जब मज़दूर को लगाए गए श्रम के बदले में किसी श्रम भाग की मज़दूरी नहीं मिलती। मार्क्स कहता है कि वर्गीय समाजों में ही अतिरिक्त मूल्य का तत्व होता है, क्योंकि ऐसे पूंजीवादी समाजों में पूँजीपति मज़दूरों का शो-ाण करते हैं। पूँजीपति वह होते हैं, जो उत्पादन के साधनों (जैसे भूमि, पूँजी, कारखाने आदि) के स्वामी होते हैं जबकि मज़दूर वह होते हैं, जिनके पास उत्पादन के साधन नहीं होते, अपितु उनके पास केवल श्रम शक्ति होती है, जिसे वह जीवित रहने के लिए बेचते हैं। जैसे जैसे अतिरिक्त मूल्य बढ़ता है, वैसे वैसे मज़दूर को और कम मज़दूरी मिलती है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इस प्रकार की स्थिति से पूँजीपतियों व मज़दूरों में तीव्र विरोधाभाव बढ़ने लगता है और केवल समाजवादी क्रान्ति में अंततः उस विरोधाभाव को समाप्त करना संभव होता है। ऐसी क्रान्ति पूंजीवाद की मृत्यु बनती है। पूंजीवाद के अंत पर राज्य शक्ति पर मज़दूरों का अधिकार स्थापित हो जाता है। मज़दूरों द्वारा राज्य शक्ति प्राप्त करने के पश्चात् मार्क्स 'सर्वहारा के अधिनायकवाद' के संक्षिप्त शासन की कल्पना करता है। इस सर्वहारा के अधिनायकवाद के समय के दौरान समाज समाजवादी रूप धारण करेगा, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुरूप काम प्राप्त होगा। समाजवादी चरण के पश्चात् साम्यवादी समाज की स्थापना होगी, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की उसकी क्षमता के अनुरूप उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। अतः मार्क्स द्वारा साम्यवाद ऐसा समाज होगा, जो सम्बद्ध उत्पादनों का वर्गविहीन समाज होगा।

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवाद सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकवाद का वह समाज होगा, जो पूंजीवाद को उखाड़ फैंकने के बाद अस्तित्व में आएगा। इस समाज में निजी सम्पत्ति तथा निजी स्वामित्व को समाप्त कर दिया जाएगा। साम्यवादी समाज में न तो शो-ाण होगा और न ही अलगाववाद। मार्क्स के अनुसार साम्यवाद में मनु-य की उसके अलगावीय स्थिति से उसके स्वत्व की ओर वापसी होगी। इसमें समाज के परस्पर विरोधी वर्ग नहीं होंगे। ऐसा तभी हो सकेगा, जब मज़दूर उत्पादन के साधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेंगे। जब समाज वर्गविहीन बन जाएगा, तब राज्य की जरूरत नहीं पड़ेगी। पूंजीवादी राज्य पूँजीपतियों की एक प्रबन्धनकारी समिति है, जो एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर शो-ाण को आसान करती है। अतः एक वर्गविहीन समाज में राज्य अनावश्यक हो जाएगा तथा लुप्त हो जाएगा। मार्क्स का कहना है कि प्राचीन काल के कबीली/जनजाति समाजों में वर्गविहीन समाज वाली परिस्थितियाँ विद्यमान थीं।

18.3 वी. आई. लेनिन (1870-1924)

22 अप्रैल, 1870 को लेनिन का जन्म सिम्बीरस्क में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा सामान्य ही रही। जब वे सोलह व-र्ा की आयु में विद्यालय स्तर की अन्तिम परीक्षा दे रहे थे, तब उनके बड़े भाई ऐल्कज़ैन्डर पर रूसी सम्राट (जिन्हें ज़ार कहा जाता था) को मारने के -ाडयन्त्र का आरोप लगाया गया था तथा रूसी सरकार ने उस कारण उनके भाई को मृत्यु दण्ड दिया था। इस घटना के बावजूद भी लेनिन ने विद्यालय परीक्षाओं में अधिकाधिक सम्भव अंक प्राप्त किए थे। स्कूल शिक्षा के पश्चात् लेनिन ने काज़ान विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। अपने काज़ान विश्वविद्यालय के वास के दौरान उन्होंने विभिन्न विद्यार्थी आन्दोलनों में भाग लिया, जिनके फलस्वरूप उन्हें विश्वविद्यालय से नि-कासित भी किया था। इसके पश्चात् उन्होंने अपने आपको क्रान्तिकारी गतिविधियों में सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया तथा सैंट पीटरसबर्ग में मार्क्सवादी गुट के नेता के रूप में सक्रिय भाग लेने लगा। ज़ार प्रशासन ने उन्हें 1895 में बंदी बना कर साईबेरिया भेज दिया। यहाँ उन्होंने अपनी पहली मुख्य रचनाः *डवैल्पमैंट ऑफ़ कैपिटलज़िम* (1899) लिखी। इस रचना में उन्होंने बताया कि अपने प्रारंभिक काल में पूंजीवाद ने रूस में किस प्रकार विकास किया। वह 1900 ई. में जिनेवा आ गये तथा प्लैकननोव के क्रान्तिकारी गुट में प्रवेश लिया। यहाँ उन्होंने **इस्कारा** नाम के पत्र का सम्पादन आरंभ किया तथा ज़ारशाही के विरुद्ध अच्छा खासा प्रहार भी किया। 1902 ई में उन्होंने अपनी दूसरी मुख्य रचना - *वट् इज़ टू बी डन* लिखी। इस रचना का सम्बन्ध दलीय संगठन से है। 1916 ई. में जब प्रथम विश्व युद्ध अपने अग्रिम चरण में पहुँचा तो लेनिन ने अपनी छेदक रचना *इमपिरिलिज़म : द हाइस्टि स्टेज आफ़ कैपिटलिज़म* लिखी, जिसमें उन्होंने साम्राज्यवाद के तत्व का विश्ले-ाण किया। 1917 ई. में उन्होंने रूस की सत्ता पर अधिकार स्थापित किया। ऐसा करके उन्होंने एक सफलपूर्वक मार्क्सदी क्रान्ति का श्रेय प्राप्त किया, और वह भी ऐसे देश में हुई क्रान्ति जो पूंजीवादी रूप से एक अविकसित देश था। इस क्रान्ति के फलस्वरूप रूस में सामंतवादी ज़ारशाही का अंत कर दिया गया और वहाँ प्रथम समाजवादी देश की स्थापना कर दी गयी। इस सफलतापूर्वक क्रान्ति के बाद लेनिन बार-बार दौरों का शिकार होता गया। उनके निरन्तर बिगड़ते स्वास्थ्य ने उन्हें सक्रिय प्रशासकीय कार्यों से दूर रहने पर विवश कर दिया। फिर भी, क्रान्ति के कुछ व-र्ाों बाद तक जब तक वह जीवित रहे, लेनिन ने एक समाजवादी राज्य की नींव अवश्य डाल दी, जिसे उनके बाद उनके उत्तराधिकारी जोज़िफ स्टालिन ने थोड़े ही समय में एक बड़ी शक्ति के रूप में विकसित किया।

18.3.1 सर्वहारा के अग्रणी के रूप में दल

मार्क्सवादी सिद्धान्त व व्यवहार में लेनिन का योगदान महत्वपूर्ण है और कई रूप का है। उन्होंने अपनी रचना *डवैल्पमैंट आफ़ कैपिटलिज़म इन रशिया* में ज़ारशाही रूस को मार्क्सवादी रूप से समझने/समझाने का प्रयास किया था। उन्होंने बताया कि रूस में मज़दूर-श्रम वर्ग की संख्या बहुत है। परन्तु, उन्होंने खेद व्यक्त किया कि यह वर्ग अपने शो-ाण से सचेत नहीं है। उन्होंने यह भी बताया कि इस वर्ग की शिकायतों/दुखों को क्रान्तिकारी दिशा की ओर मोड़ देने वाले औद्योगिक मज़दूरों की अति आवश्यकता है। ऐसा तभी हो सकता है, जबकि कोई सचेतन मज़दूर वर्ग श्रम-मज़दूरों को उनके स्थानीय तथा ट्रेड यूनियनों की माँगों से ऊपर उठा सके। उनका मत था कि केवल रा-ट्रीय स्तर का सचेतन वर्ग ही ऐसा काम कर सकता है। केवल ऐसा वर्ग (संगठन) मज़दूरों में राजनीतिक चेतना उजागर कर मज़दूर-श्रम वर्ग को क्रान्तिकारी वर्ग में बदल कर एक सफल क्रान्ति करने के योग्य बना सकता है। लेनिन ने वास्तविक व्यवहार में ऐसा करने का प्रयास किया था। उनके लिए सबसे बड़ा

काम रूस में ऐसे मज़दूर वर्ग को खड़ा करना था, जो अपने शो-ाण के प्रति जागरूक हो। वह वर्ग जानता हो कि उसका शो-ाण किया जा रहा है। उनकी नज़र में ऐसा करने के लिए एक साम्यवादी संगठन का बनाना ज़रूरी था, परन्तु लेनिन जानता था कि रूसी ज़ारशाही खुले रूप से ऐसे संगठन को न तो टिकने देगी और न ही काम करने देगी। मात्र विकल्प यह था कि ऐसा संगठन भूमिगत तरीकों से अपनी गतिविधियों को चलाए। अतः लेनिन के समक्ष एक-दूसरे से जुड़ी दो समस्याएँ थीं: (i) रूसी मज़दूरी करने वाले मज़दूरों के लिए रा-ट्रीय स्तर के एक संगठन को बनाना तथा (ii) उनके राजनीतिक चेतना के स्तर को ऊपर उठाना। लेनिन ने यह तर्क दिया कि रूसी विचित्र परिस्थितियों में एक साम्यवादी दल की ज़रूरत है जो मज़दूर वर्ग के लिए अग्रणी का काम कर सके। स्टालिन ने इस विचार को और अच्छे ढंग से बताते हुए कहा था कि मज़दूरों के लिए साम्यवादी दल का न होना बिना सेनापति के सेना का होना है। लेनिन ने न केवल रूस में साम्यवादी दल के होने की बात की थी, अपितु उन्होंने इस तथ्य पर भी ज़ोर दिया था कि ऐसे दल में पूरे समय के व्यवसायिक क्रान्तिकारी हों। केवल तभी ही सफल क्रान्ति लायी जा सकती है। अतः यह स्प-ट है कि लेनिन अपनी इस युक्ति से आरंभिक मार्क्सवादी धारणा से थोड़ा हट रहे हैं। वास्तव में, क्रान्ति लाने के काम को मार्क्स ने मज़दूरों को सौंपा था, परन्तु लेनिन ने मज़दूर वर्ग की अग्रणी, साम्यवादी दल को क्रान्ति करने का दायित्व हस्तांतरित कर दिया। लेनिन की इस *अग्रणी धारणा* का समकालीन साम्यवादियों ने - विशे-ा रूप से पोलैण्ड की एक मार्क्सवादी महिला रोज़ा लयुक्ज़म्बर्ग - विरोध किया था तथा इस आधार पर लेनिन की आलोचना की थी। रोज़ा लयुक्ज़म्बर्ग ने मत व्यक्त किया था कि अग्रणी सिद्धान्त मज़दूरों को साम्यवादी दल का अभिभावक बना देगा। उन्होंने यह भी कहा कि लेनिन का अग्रणी सिद्धान्त मज़दूरों से पहल छीनकर उन्हें दल के हाथों में खिलौना बना देगा। यह और बात है कि रोजा ल्युक्ज़बर्ग ने दल की आवश्यकता तथा नेतृत्व के महत्व को नकारा नहीं था, परन्तु उन्होंने इस तथ्य पर बल अवश्य दिया कि अग्रणी सिद्धान्त मज़दूरों से स्व-स्वतंत्र होने के प्रयासों को मंद कर देगा।

18.3.2 लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद

साम्यवादी दल को मज़दूरों के अग्रणी के रूप में स्वीकारते हुए लेनिन ने दल के लिए विशे-ा रूप के संगठनात्मक संरचना की दलील दी। इस संदर्भ में उनका सिद्धान्त जैसे नाम से जान पड़ता है, वह हैः 'लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद'। सरल शब्दो में, लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद में दो शब्द हैंः लोकतंत्र तथा केन्द्रवाद। इसका अर्थ यह है कि साम्यवादी दल का संगठन कुछ इस प्रकार से हो कि दल के उच्चतर स्तर का चुनाव दल के निम्नतर स्तर द्वारा हो तथा दल के सभी स्तरों पर दलीय मामलों पर स्वतंत्र तथा मुक्त वार्ता व वाद-विवाद हो। परन्तु जैसे ही उच्चतम स्तर पर निर्णय ले लिया जाता है, तो शे-ा सभी स्तर उस निर्णय को मानने के लिए बाध्य हों। जहाँ सैद्धान्तिक दृ-टि से लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद में लोकतंत्र तथा केन्द्रीयवाद दोनों हैं, परन्तु वास्तविक व्यवहार में दल कम से कम लोकतान्त्रिक तथा अधिक से अधिक केन्द्रकृत होता जाता है। अग्रणी सिद्धान्त की भांति लेनिन के लोकतान्त्रिक केन्द्रीयवाद सिद्धान्त की भी समकालीन मार्क्सवादियों ने आलोचना की थी।

18.3.3 साम्राज्यवाद

पूंजीवाद के अपने विश्ले-ाण में लेनिन ने यह तर्क दिया था कि सामंतवाद तथा ज़ार अत्याचारी शासन को उखाड़-फैंकने की प्रक्रिया तथा लोकतंत्र व पूंजीवाद लाने में पूँजीपतियों की एक क्रान्तिकारी भूमिका होती है। लेनिन उसे "पूंजीवादी लोकतान्त्रिक क्रान्ति" का नाम देता है। इस क्रान्ति के फलस्वरूप राजनीतिक शक्ति पूंजीपतियों के हाथों में आ जाती है। पूँजीपतियों के शासन में पूंजीवाद

का आगे फिर विकास होता है। अंततः पूंजीवाद ऐसे चरण पर पहुँच जाता है, जहाँ पूँजीपतियों तथा मज़दूरों में विरोधाभास अति तीव्र हो जाता है। इससे मज़दूर द्वारा समाजवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ बनती हैं और उसके फलस्वरूप पूंजीवाद का अंत होता है। मार्क्स की यह भवि-यवाणी कि यूरोप में पूंजीवाद का विकास मज़दूर-समाजवादी क्रान्ति को लाने में सफल होगा, सही सिद्ध नहीं हुई। लेनिन ने यह समझाने का प्रयास किया कि यूरोप में मज़दूर समाजवादी क्रान्ति क्यों नहीं हुई और पूंजीवाद का अंत क्यों नहीं हुआ और कि पूंजीवाद का अंत तथा मज़दूर समाजवादी क्रान्ति रूस में क्यों हुई। पूंजीवाद को जीवनदान क्यों मिला? मज़दूर अपने ऐतिहासिक लक्ष्य (यूरोप में क्रान्ति क्यों नहीं हुई) में असफल क्यों रहें? लेनिन ने *इमपिरियलिज़िम - द हाइस्ट स्टेज ऑफ़ कैपिटलिज़िम* - में यह बताया कि पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद को जीवन दान क्यों प्राप्त हुआ। उसकी नज़र में पूंजीवादी देशों में पूंजीवाद इतना अधिक विकसित हो गया कि कच्चे माल तथा घरेलू बाज़ार व्यवस्था उसके और अधिक विकसित करने में सहायक नहीं हो सकते थे। इसलिए इन पूंजीवादी देशों के लिए यह ज़रूरी हो गया कि वह कच्चे माल तथा नई मण्डियों के लिए अपने अपने देशों से बाहर निकलते। अतः इन पूंजीवादी देशों ने कच्चे माल, बने माल के लिए बाज़ार तथा अतिरिक्त पूँजी निवेश के लिए एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका के महाद्वीपों की ओर बढ़ना शुरु किया। इस प्रकार पूंजीवाद का यूरोप से निर्यात हो गया। अब इसने एकाधिकारवादी रूप धारण कर लिया तथा प्रतिक्रियावादी बन गया। एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अफ्रीका के औपनिवेशीकरण के कारण, पूंजीवाद ने पराश्रयिक स्थिति प्राप्त कर ली। इस प्रकार पूंजीवाद अपने उच्चतम चरण तक पहुँच चुका था, अर्थात उन्होंने साम्राज्यवाद की स्थिति प्राप्त कर ली तथा विभिन्न पूंजीवादी देशों में मज़दूर क्रान्ति लाने की परिस्थितियाँ पैदा कर दी। यह और बात है कि अपने साम्राज्यवादी रूप में पूंजीवाद ने विश्व स्तर पर समाजवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी।

18.3.4 ज़ंजीर की दुर्बलतम कड़ी

रूस जैसे एक पूंजीवादी रूप में अविकसित देश में बॉलश्विक क्रान्ति ने लेनिन के लिए दो नयी समस्याएँ खड़ी कर दी थीं। पहली समस्या यह थी कि इस क्रान्ति की मार्क्सवादी ढंग से व्याख्या कैसे की जाए। इसके लिए लेनिन ने 'ज़ंजीर की दुर्बलतम कड़ी' तर्क का आवि-कार किया। इसका अर्थ यह था कि रूसी ज़ारशाही व्यवस्था में पूंजीवाद पूरी तरह से विकसित नहीं था और इस कारण, रूस साम्राज्यवादी कड़ी की दुर्बलतम ज़ंजीर हैः सामरिक दृ-टि से ज़ंजीर को उसके दुर्बलतम बिन्दु पर तोड़ना अधिक उपयुक्त होता है, न कि उस बिन्दु पर जहाँ वह सशक्त हो। वास्तव में, ऐसा सब कुछ मार्क्स के विचारों से भी स्प-ट होता है। मार्क्स ने कहा था कि पूंजीवाद के विकास के साथ पूँजीपति भी सशक्त तथा और अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। वह यह भी कहते हैं कि पूँजीपतियों के शक्तिशाली होने के साथ पूंजीपतियों की कब्र खोदने वाले अर्थात् मज़दूर भी सशक्त हो जाते हैं। मज़दूरों के विकास तथा सशक्त हुए बिना पूंजीपति सशक्त नहीं होते। अतः जिन समाजों में पूंजीपति सशक्त होते हैं, वहाँ मज़दूर भी सशक्त होते हैं। इसी प्रकार जहाँ पूंजीपति कमज़ोर होते हैं, वहाँ मज़दूर भी कमज़ोर होते हैं। लेनिन का तर्क यह था कि पूंजीवादी दृ-टि से यूरोप के विकसित देश साम्राज्यवादी ज़ंजीर की सशक्त कड़ी हैं, जबकि ज़ार रूस में दुबर्लतम कड़ी।

लेनिन के लिए दूसरी समस्या और अधिक गंभीर थी। क्योंकि क्रान्ति ज़ार-रूस में पहले हुई थी जहाँ पूंजीवाद अभी विकसित नहीं हुआ था, वहाँ समाजवादी राज्य के निर्माण की योजना बनाना एक समस्या थी। यह समस्या और अधिक बढ़ गयी, क्योंकि मार्क्स ने समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप समाजवादी राज्य कैसे बनेगा, की तस्वीर नहीं खींची थी। लेनिन के अनुसार, पूंजीवादी राज्य वर्गीय

शासन के अंग के रूप में उभरता है; यह श्रमिक वर्ग के शो-ाण हेतु बल व हिंसा का एक विशे-ा संगठन है। क्रान्ति के फलस्वरूप पूंजीवादी राज्य का स्थान समाजवादी राज्य ने लेना था। अपनी रचना *स्टेट एण्ड रैवुल्युशन* में लेनिन ने रूस में समाजवादी राज्य की रणनीति की रूपरेखा खींचने का प्रयास किया था। उन्होंने कहा कि पूंजीवादी राज्य की अफसरशाही सैनिक रूप की सरकार के स्थान पर पैरिस कम्यून की तर्ज़ पर सोवियत/श्रमिक शक्ति प्राप्त करेंगे। लेनिन राज्य के लुप्त होने की मार्क्सवादी धारणा की वास्तविकता का इच्छुक नहीं था। इसके विपरीत लेनिन ने यह तर्क दिया कि अंतरिम चरण (पूंजीवाद के अंत तथा साम्यवाद की स्थापना के बीच के चरण) में साम्यवादी अपने राजनीतिक तथा आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राज्य यंत्र का प्रयोग कर सकते हैं। इसका मतलब यह भी था कि कुछ समय के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था (सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों का सह-अस्तित्व) के अंतर्गत तब तक काम किया जा सकता है, जब तक कि सार्वजनिक क्षेत्र समाजवादी समाज की रचना का पूर्ण दायित्व स्वयं नहीं ले लेता। तभी राज्य के लुप्त होने की संभावना हो सकती है।

18.3.5 सहजकता तत्व समय तथा स्थान को चयनात्मक प्रदान करता है

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि लेनिन ने सर्वहारा के अग्रणी के रूप में साम्यवादी दल को सफल क्रान्ति करने का दायित्व सौंपा था। लेनिन का ऐसा करना प्रारंभिक मार्क्सवादी स्थिति से हटने के समान था। मार्क्स को मज़दूरों की क्रान्तिकारिता पर विश्वास था। परन्तु लेनिन के तर्क में मार्क्स की सहजकता के तत्व की अपेक्षा समय और स्थान की चयनात्मकता ने स्थान ले लिया। लेनिन ने मैनश्विक वर्ग (साम्यवादी दल का अल्पसंख्यक समूह) की धारणा की आलोचना की थी जो यह कहा करते थे कि क्रान्तिकारियों को जनता में सहज क्रान्तिकारी गतिविधियों के विकास की प्रतिक्षा करनी चाहिए। उनका तर्क था कि बिना सशक्त नेतृत्व के (जो श्रमिकों को बाहर से प्राप्त होता है) श्रमिक अपनी माँगों को ट्रेड यूनियन स्तर से बाहर नहीं ला सकते। उनकी दृ-टि से ट्रेड यूनियनवाद सुधारवादी होता है, क्रान्तिकारी नहीं। लेनिन के इस तर्क से यह भाव निकलता है कि साम्यवादी दल का नेतृत्व ही यह निर्णय लेगा कि क्रान्ति कहाँ तथा कब लानी है। दूसरे शब्दों में, क्रान्ति के कार्यक्रम को श्रमिक निर्धारित नहीं करेंगे; ऐसा अधिकार केवल दल के नेतृत्व का होगा। लेनिन के इस दृ-टिकोण की उनके समकालीन विचारकों, विशे-ातः रोज़ा ल्युक्ज़म्बर्ग, ने आलोचना की थी। रोज़ा ल्युक्ज़म्बर्ग ने कहा कि क्योंकि क्रान्ति के समय, स्थान तथा रणनीति का निर्णय साम्यवादी दल करेगा, जैसा कि लेनिन का तर्क है, इसलिए क्रान्ति के सहजकता तत्व (जो मार्क्स की धारणा में अंतर्निहित विचार है) की जगह समय तथा स्थान की चयनात्मकता ने ली थी। इससे श्रमिक वर्ग में स्व-स्वतंत्र प्रयासों को और धक्का लगेगा, अर्थात् ऐसे प्रयास और मंद पड़ जाएँगें।

18.4 माओ ज़े डौंग (1893-1976)

माओ का जन्म 26 दिसम्बर, 1893 को हुनान के प्रान्त शाऊशन में हुआ था। लेनिन के बाद यह दूसरे मार्क्सवादी क्रान्तिकारी हैं, जिन्होंने चीन जैसे पिछड़े देश में सफल क्रान्ति लाने में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने ऐसी क्रान्ति कृ-ाकों की सहायता से की थी, जिसके वि-ाय में मार्क्स कहा करते थे कि ऐसे वर्ग में क्रान्तिकारिता की संभावित शक्ति होती ही नहीं है। लेनिन ने भी कृ-ाक वर्ग से कुछ अधिक अपेक्षा नहीं की थी। लेनिन की भांति माओ मार्क्सवाद के सिद्धान्तकार हीं नहीं थे, अपितु उसको व्यवहारिक रूप देने वाले भी थे। थोड़ी औपचारिक शिक्षा के पश्चात् वह कोमिनटांग द्वारा चालित ज़ार की क्रान्ति में हुनान की सेना में भर्ती हो गये। कोमिनटाँग दल पूंजीवादी रा-ट्रीय दल था, जिसकी

स्थापना सन युत सेन ने की थी। कोमिनटाँग सफल क्रान्ति के पश्चात् माओ पहले चांगशा (हुनान की राजधानी) तथा बाद में पीकिंग (अब बीजींग) आ गये। यहाँ वह क्रान्तिकारी मार्क्सवादी नेता ली डाज़ाओ से प्रभावित हुए, जिन्होंने उसके लिए विश्वविद्यालय पुस्तकालय में नौकरी का प्रबंध किया। उन्होंने शीघ्र ही यह नौकरी छोड़ दी और चांगशा वापस आ गये तथा चीन के साम्यवादी दल में सक्रिय भाग लेने लगे। 1921-25 के दौरान उन्होंने खान श्रमिकों को संगठित किया। उन्होंने चीन के अनेक क्षेत्रों का दौरा भी किया जिससे उसे तबके कृ-ाकों की शो-ाणकारी स्थितियों की सीधी एवं स्प-ट जानकारी प्राप्त हुई। यह कोमिनटाँग तथा चीन के साम्यवादी दल के परस्पर सहयोग का काल था। दोनों में तनाव तब बढ़ने लगा, जब साम्यवादी दल ने कोमिनटाँग पार्टी से कृ-ाक सुधारो की माँग की जो उस दल को स्वीकारनीय नहीं था, क्योंकि उस दल में बहुत से सदस्य ऐसे थे जो स्वयं भू-स्वामी थे। 1927 के आते आते दोनों दलों के सम्बन्ध इतने बिगड़ गए कि कोमिनटाँग पार्टी ने चीन के साम्यवादी दल के सदस्यों, अर्थात् साम्यवादियों पर प्रहार करने आरंभ कर दिए। दोनों के बीच फूट के पश्चात् माओ हुनान कृ-ाकों के विद्रोह को गठित करने में जुट गये। इस विद्रोह के समय के दौरान माओ ने अपनी पहली मुख्य रचना - *ऐनैलिस्सि आफ़ क्लास्सि इन द चाइनिज़ सोसाइटी* लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने कृ-ाकों की भिन्न श्रेणियों का वर्णन किया - छोटे, किनारे के, मध्यवर्गीय तथा बड़े वर्ग के किसान - तथा इनमें प्रत्येक में संभावित क्रान्तिकारिता के तत्वों की पहचान की। उन्होंने कृ-ाकों तथा भू-स्वामियों के बीच विरोधाभास पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह तर्क दिया कि चीन की विचित्र परिस्थितियों में कृ-ाक क्रान्ति के अग्रणी होंगे। उन्होंने ऐसी सोच ज़ार-रूस में मज़दूरों द्वारा अग्रणी भूमिका के विपरीत थी। उन्होंने उन वर्गों को भी तलाशने का प्रयास किया, जो कृ-ाकों के नेतृत्व में होने वाली क्रान्ति में विश्वस्त परन्तु अस्थायी रूप से सहायता कर सकते थे। उन्होंने 1928 में कृ-ाकों की हारवेस्ट अपराइंज़िंग का प्रयास भी किया। परन्तु ऐसा विद्रोह कुचल दिया गया और माओ को अपने समर्थकों के साथ चिंगकांगशन (अब जिगोगंशन) पहाड़ियों की ओर भागना पड़ा था। इन पहाड़ियों में माओ के दल ने छापामार युद्ध दाव-पेंच रणनीति का प्रयोग किया। इस से माओ मार्क्सवादी क्रान्तिकारी दायरे में गुरिल्ला (छापामार) युद्ध कौशल का आरंभकर्त्ता बन गये। अपने इन दाव-पेंचों के फलस्वरूप चीन के साम्यवादी दल ने दक्षिण-पूर्वी चीन के अनेक भागों पर कब्ज़ा कर लिया। ज़ब्त किए गए क्षेत्रों में कृ-ाक परि-ादों की स्थापना की गयी। चीन के साम्यवादी दल की यह उपलब्धियाँ कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की निर्धारित नीतियों के अनुरूप नहीं थीं, जो शहरी केन्द्रों से क्रान्ति के संचालन का प्रवक्ता था। माओ ने कहा कि शहरी-केन्द्रित क्रान्ति चीन में कभी सफल नहीं हो सकती, क्योंकि चीन में मज़दूर वर्ग संख्या में बहुत थोड़ा है। इस प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों में गुरिल्ला युद्ध दावपेंच निरंतर बढ़ता रहा। कोमिनटाँग शासकों ने ऐसे तरीकों को दबाने के प्रयास किए तथा उन क्षेत्रों को चारों ओर से घेरने का प्रयास किया, जहाँ कृ-ाक परि-ादें स्थापित की गयी थीं।

अंततः कोमिनटाँग सेनाओं ने क्रान्तिकारियों को चीन की उत्तर-पश्चिमी पहाड़ियों की ओर धकेल दिया। माओ के इस पलायन को माओ का **लांग मार्च** कहा जाता है। इस मार्च ने माओ को चीन के साम्यवादी दल का उसकी मृत्यु तक निर्विवाद नेता बना दिया। माओ का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में वास चीन के साम्यवादी दल के लिए अति लाभकारी काल सिद्ध हुआ। इसी काल में माओ ने मार्क्सवादी दर्शन का गहन अध्ययन किया। इसी काल में माओ ने दो गंभीर लेख भी लिखे बताए जाते हैं: "आन प्रैक्टिस" तथा "आन कॅन्ट्राडिक्शन"। इन दोनों का प्रकाशन चीन की सफल मज़दूर क्रान्ति के पश्चात हुआ था। 1940 के दशक में माओ ने "न्यू डेमोक्रेसी" (1945) शी-ार्क के अन्तर्गत भावी चीन की सरकार की रूपरेखा खींची थी। 1942-43 के दौरान माओ ने अपने संभावित प्रतिद्वंद्वियों का संशोधन अभियान के अंतर्गत साम्यवादी दल से हटा दिया। उन्होंने कृ-ाक के जन संघटन प्रयास हेतु रणनीति

बनायी, जो माओ की **जनपंक्ति** के नाम से जानी जाती है। इसके अंतर्गत उन्होंने जापानी आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में अति रा-ट्रवादी संस्थिति अपनाई तथा समस्त चीन निवासियों को रा-ट्रवादी भावनाओं के अंतर्गत एकत्रित किया। उन्होंने गुरिल्ला सिद्धान्त व व्यवहार को परि-कृत किया। चीन की सुरक्षा के खतरे के परिप्रेक्ष्य में कोमिनटाँग तथा साम्यवादी दल दूसरे विश्व युद्ध में पुनः एक-दूसरे के साथ मिल गए। 1949 में जब इन दोनों में सहयोग अंततः समाप्त हुआ, तो माओ चीन के राज्य के अध्यक्ष बन गए तथा तबसे यह देश जनवादी चीन गणराज्य के रूप में जाना जाने लगा। चीन के समाज की रचना में माओ ने जो प्रतिमान प्रस्तुत किया, वह मार्क्स की रचनाओं में प्रतिपादित रूपरेखा से अलग था और उससे भी अलग था, जिसे लेनिन ने सोवियत संघ में बनाने का प्रयास किया था। 1950 के दशक के आरंभ में माओ ने *लैट हण्डरेड फ्लावर्ज़ ब्लूम* का आह्वान किया, जिसके फलस्वरूप चीन के साम्यवादी दल में विभिन्न दृ-टिकोणों को दल में अपनी बात कहने की खुली स्वतंत्रता मिली । बाद में उन्होंने कृ-ि के सामुहिकीकरण का प्रयास किया और उसके साथ **ग्रेट लीप फावर्ड** के माध्यम से चीन में साम्यवाद लाने पर ज़ोर दिया। माओ अपने इन प्रयासों में सफल नहीं हुए। फलस्वरूप उन्होंने आर्थिक कार्यक्रम से जुड़े यत्नों के विरोध में असंतो-ा भी उभरने लगा। माओ ने इस विरोध का वैचारिक आधार पर मुकाबला किया तथा 1966 में सांस्कृतिक क्रान्ति (कल्चरल रैवुल्युशन) का आह्वान किया। सांस्कृतिक क्रान्ति का उद्देश्य साम्यवादी दल के सक्रिय सदस्यों में क्रान्तिकारी जोश को और अधिक तीव्र करना था। यह विचार उनकी मृत्यु (1 सितम्बर 1976) तक उनके साथ रहा।

18.4.1 कृ-ाक क्रान्ति

इसमें सन्देह नहीं है कि माओ के विचारों पर मार्क्स तथा लेनिन के विचारों का काफी प्रभाव पड़ा था, परन्तु वे अपने अधिकार रूप में स्वयं भी एक नवप्रवर्तक था। कृ-ाक क्रान्तिकारिता की शक्ति पर आश्रित माओ ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद में संशोधन किया। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मार्क्स कृ-ाक वर्ग को अवमानना की दृ-टि से देखते थे। उनके लिए कृ-ाक वर्ग रुढ़िवादी भी होता है तथा प्रतिक्रियावादी भी। वे उन्हें आलुओं के झोले की संज्ञा देते थे, जो किसी भी प्रकार क्रान्ति नहीं कर सकते। लेनिन भी क्रान्ति के लिए रूस के शहरी केन्द्रों के श्रमिकों पर भरोसा करते थे तथा उन्हें भी कृ-ाकों की क्रान्तिकारिता शक्ति में विश्वास नहीं था। माओ का मौलिक योगदान इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने चीन में सफल क्रान्ति का श्रेय कृ-ाकों को दिया था। साथ ही, उनके क्रान्ति के प्रतिपक्ष ने अनेक अफ्रीकी-एशियाई समाजों के लिए सार्थक रूप धारण कर लिया। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौर में माओ ने सोवियत संघ के उत्तर-क्रान्तिकाल से शिक्षा लेते हुए इस ओर ध्यान दिलाया था तथा चेतावनी भी दी थी कि समाजवादी समाज के अंतराल काल में ऐसे समाज से लाभ लेने हेतु एक नया पूंजीवाद वर्ग भी खड़ा हो सकता है। दूसरे शब्दों में, माओ इस तथ्य से सचेत थे कि दल के बड़े नेताओं का वर्ग स्वयं ऐसा पूंजीवादी वर्ग बन सकता था। माओ ने चीन के साम्यवादी दल में उच्च सोपानकों को एक तरफ रखने हेतु इस प्रकार का तर्क प्रस्तुत किया था।

18.4.2 विरोधाभास

मार्क्सवादी सिद्धान्त में समाज में होने वाले सभी परिवर्तनों का मुख्य तत्व विरोधाभास है। माओ ने विरोधाभास के विचार को और अधिक विस्तृत रूप दिया था। उनके अनुसार ऐतिहासिक विकास का मूल नियम यह है कि विरोधाभास की एकता, अर्थात् विपरीतों संवाद (वाद तथा प्रतिवादी) एक उच्चतर स्तर तथा संख्यात्मक से गुणात्मक स्थितियों में पहुँचा देते हैं। परन्तु माओ ने मार्क्स के विरोधाभास की धारणा को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मार्क्स ने अपनी रचनाओं में

विरोधाभासों तथा अन्तर्विरोधों को पर्यायावाची माना था। लेनिन ने इन दोनों में भेद करने का प्रयास किया था। उन्होंने मत व्यक्त किया था कि समाजवादी समाज में भी विरोधाभास रहेंगे, यद्यपि वहाँ अंतर्विरोध नहीं होंगे। माओ ने इस वाद-विवाद को और समृद्ध बना दिया। 1937 में अपने सुप्रसिद्ध निबन्ध 'आन कॅन्ट्राडिक्शनज़' में माओ ने विरोधाभासों को 'अंतर्विरोधी' तथा 'ग़ैर-अंतर्विरोधी' रूप में विभाजित किया। उनके अनुसार अंतर्विरोधी विरोधाभास वह होते हैं, जिन्हे शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाया नहीं जा सकता। 1957 में लिखे एक लेख "ऑन करैक्ट हैंडलिंग ऑफ़ कन्ट्राडिक्शन्स" में माओ ने इस विचार को और विस्तृत रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने तर्क दिया कि कृ-ाकों तथा मज़दूरों के बीच विरोधाभास ग़ैर-अंतर्विरोधी होते हैं; कृ-ाकों तथा मज़दूरों के बीच एक ओर तथा छोटे छोटे दुकानदारों के बीच दूसरी ओर विरोधाभास ग़ैर-अंतर्विरोधी होते हैं; कृ-ाकों, मज़दूरों तथा छोटे छोटे दुकानदारों (पूंजीपतियों) के बीच एक ओर तथा रा-ट्रीय पूंजीपतियों के बीच दूसरी ओर अंतर्विरोध ग़ैर-अंतर्विरोधी होते हैं, परन्तु चीन के लोगों तथा कैम्पराडोर पूंजीपतियों में विरोधाभास अंतर्विरोधात्मक होते हैं; समाजवादी तथा पूंजीवादी वर्गों के बीच विरोधाभास अंतर्विरोधात्मक होते हैं; औपनिवेशिक देशों व साम्राज्यवादी देशों के बीच विरोधाभास अंतर्विरोधात्मक होते हैं। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि किसी एक समय एक विरोधाभास मुख्य विरोधाभास हो सकता है जबकि दूसरे समय वह लघु विरोधाभास भी हो सकता है; उन्होंने यह भी कहा कि एक मुख्य विरोधाभास में एक मौलिक पहलू तथा अन्य छोटे छोटे पहलू भी हो सकते हैं। उदाहरणतः साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादी गुट में एक ओर तथा समाजवादी व औपनिवेशिक देशों में दूसरी ओर विरोधाभास मुख्य रूप का हो सकता है; सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य के बीच विरोधाभास मुख्य विरोधाभास का मुख्य पहलू है। उन्होंने आगे यह भी बताया कि कौन सा विरोधाभास अंतर्विरोधात्मक है तथा मुख्य रूप का है अथवा लघु रूप का है और कौन सा विरोधाभास ग़ैर-अंतर्विरोधात्मक अथवा किस पहलू को मुख्य अथवा लघु कहा जाए - ऐतिहासिक, सामरिक, सापेक्ष परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

18.4.3 ऑन प्रैक्टिस

विरोधाभासों के विस्तृत रूप के विश्ले-ाण के आधार पर माओ ने अपने ज्ञान के सिद्धान्त की व्याख्या की थी। अपने सुप्रसिद्ध निबन्ध *ऑन प्रैक्टिस* (1973) में उन्होंने कहा था कि वास्तविक संसार का हमारा समस्त ज्ञान हमें ठोस अन्वे-ाण तथा आनुभविक विश्ले-ाण से प्राप्त होता है। उन्होंने मात्र किताबों से मिलने वाले ज्ञान तथा सहजबोध सिद्धान्तवाद का विरोध किया। उदाहरणतयः उन्होंने कहा कि यदि कोई चीन के समाज को समझना चाहता है, तो उसे उस समाज के वर्गीय ढाँचे को समझना होगा, उसे भू-स्वामित्व के प्रतिरूप को जानना होगा तथा चीन की अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवाद के प्रभाव को ध्यान में रखना होगा। बिना निरंतर आनुभाविक वास्तविकता के सिद्धान्त मात्र एक मतांधता बन कर रह जाता है। आनुभाविक वास्तविकता को समझने के लिए माओ ने दो चरणों की बात की थी। 'चिरस्थायी चरण' तथा 'प्रत्ययात्मक चरण'। चिरस्थायी चरण पर हमें वास्तविकता का संकेत हमारी इन्द्रियों से मिलता है। यह इन्द्र-आधारित ज्ञान प्रत्ययात्मक ज्ञान भोगित हो जाता है। उदाहरणतः जब कोई ग्रामीण चीन की आनुभाविक वास्तविकता को देखता है, तो उसका ऐसा ज्ञान चिरस्थायी चरण का ज्ञान है। परन्तु इस प्रकार की वास्तविकता को देखने के बाद, हम चीन के समाज व उसके विभिन्न वर्गों को समझने का प्रयास करते हैं - यह वर्ग होते हैंः भूमिहीन, छोटे, मध्य तथा बड़े किसान- दूसरे रूप में यह प्रत्ययात्मक चरण है।

18.4.4 संयुक्त मोर्चा तथा नवीन लोकतंत्र

माओ जानते थे कि चीन में कृ-ाक इतने सशक्त नहीं हैं कि वे साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्-ा जीत सकते हैं। इसलिए उनका मत था कि ऐसी स्थिति में चीनी समाज के अन्य वर्गों की सहायता लेना अनिवार्य हो जाता है। इसी संदर्भ में माओ ने संयुक्त मोर्चे की अवधारणा पर बल दिया था। यह मोर्चा उन सभी विभिन्न सहभागियों का मोर्चा समझा जाने लगा जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे। ऐसे संयुक्त मोर्चे का स्वरूप ऐतिहासिक परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। ऐसे मोर्चे का मुख्य लक्ष्य मौलिक विरोधाभास का समाधान करना होगा। माओ ने ऐसे संयुक्त मोर्चे की रणनीति को ऐसे चीन के समाज की रूपरेखा पर लागू करने का प्रयास किया था, जिसमे मज़दूर, छोटे दुकानदार, तथा छोटे पूँजीवादी तथा रा-ट्रीय पूंजीपति किसानों के साथ रहेंगे। यह संयुक्त मोर्चा चीन के लोगों का विस्तृत रूप का संगठन होगा, एक ऐसा मोर्चा जो जापानी साम्राज्यवाद तथा पश्चिमी शक्तियों के विरुद्ध मोर्चा होना था।

संयुक्त मोर्चा रणनीति के अनुरूप माओ ने 1940 में चीन के गणराज्य के लिए एक नवीन प्रकार के लोकतंत्र का आह्वान किया था। यह विभिन्न प्रकार के वर्गों के अधिनायक का राज्य होना था। 1945 में, उन्होंने एक ऐसी राज्य-व्यवस्था का सुझाव दिया था, जिसे 'नवीन लोकतंत्र' कहा गया था। जबकि संयुक्त मोर्चे में अधिकांशतः चीन के लोग होने थे, उस मोर्चे में मुख्य स्थिति मज़दूरों की थीं। इसका अर्थ था कि छोटे दुकानदार व रा-ट्रीय पूंजीपति संयुक्त मोर्चे के सहभागी थे तथा शासकीय मोर्चे में भी वह हिस्सेदार थे, परन्तु उनकी स्थिति छोटे/कनि-ठ सहभागियों की भांति होगी। उन्होंने ऐसे राज्य को "लोगों के लोकतान्त्रिक अधिनायकवाद" का नाम दिया था। यह दो पहलुओं का संगम थाः लोगों के लिए **लोकतंत्र** तथा लोगों के शत्रुओं के लिए अधिनायकवाद अथवा साम्राज्यवादियों पर लागू अधिनायकवाद। ठोस शब्दों में, लोगों के लोकतान्त्रिक अधिनायकवाद का मतलब था कि शासकीय गठबंधन में कृ-ाक, मज़दूर, छोटे-छोटे दुकानदार/पूंजीपति तथा रा-ट्रीय पूंजीपति सभी सम्मिलित होंगे। ऐसा करके माओ शास्त्रीय मार्क्सवाद की उसे धारणा जो सर्वहारा के अधिनायकवाद की चर्चा करती थी, से हट लोगों के लोकतान्त्रिक अधिनायकवाद की बात की थी। वास्तव में, माओ ने मार्क्सवाद तथा रा-ट्रवाद को साथ मिलाने का प्रयास किया।

18.5 सारांश

इस इकाई में हमने मार्क्सवाद के संस्थापक तथा उसके दो प्रवक्ताओं अर्थात् मार्क्स और लेनिन व माओ के विचारों का विवेचन किया है। हम ने मार्क्स के अलगाववाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, अतिरिक्त मूल्य, वर्ग संघर्-ा तथा क्रान्ति के सिद्धान्तों का विश्ले-ाण किया है। इस प्रक्रिया में मार्क्स के राज्य के सिद्धान्त, सर्वहारा के अधिनायकवाद तथा समाजवादी समाज का भी वर्णन किया गया है। तत्पश्चात्, लेनिन के दलीय संगठन, लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद, उसके साम्राज्यवाद तथा उत्तर-क्रान्तिकारी राज्य आदि के सिद्धान्तों की भी चर्चा की गयी है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सहजकता के बदले में लेनिन के समय तथा स्थान के चयनात्मकता सिद्धान्त की भी विवेचना की गयी है। अंततः इस इकाई में माओ के चीन के समाज में विद्यमान वर्गों, उनकी कृ-ाक क्रान्ति की अवधारणा, विरोधाभास तथा नवीन लोकतंत्र पर उनके सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है। माओ द्वारा बताए गए अंतर्विरोधात्मक तथा ग़ैर-अंतर्विरोधात्मक विरोधाभासों का विश्ले-ाण मार्क्सवादी चिन्तन में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में माओ द्वारा प्रतिपादित *"लैट हण्डरड फ्लावर्ज़ ब्लूम"* तथा "ग्रेट लीप फार्वर्ड" की भी चर्चा की गयी है।

18.6 अभ्यास प्रश्न

1. प्रारंभिक मार्क्स का बौद्धिक योगदान क्या है? 'पहले' के मार्क्स बाद के मार्क्स से भिन्न कैसे हैं?
2. इतिहास की भौतिक व्याख्या क्या है?
3. लेनिन द्वारा प्रतिपादित दलीय संगठन का सिद्धान्त क्या है?
4. लेनिन के साम्राज्यवाद का सिद्धान्त क्या है?
5. चीन के समाज में वर्गों के माओ के विश्ले-ाण का वर्णन कीजिए।
6. विरोधाभास के सिद्धान्त में माओ का क्या योगदान रहा है?
7. माओ के नवीन लोकतंत्र के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।